International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197
Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 1108-1111

चित्रकला में समाज और पर्यावरण

अनिल सैन
शोधार्थी, चित्रकला विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान, भारत।

प्रस्तावना

चित्रकला का इतिहास उतना ही पुराना कहा जा सकता है, जितना कि मानव सभ्यता के विकास का इतिहास। सत्य तो यह है कि चित्र बनाने की प्रवृत्ति सर्वदा से ही हमारे पूर्वजों में विद्यमान रही है। मनुष्य ने जिस समय प्रकृति की गोद में आँख खोली, उस समय से ही उसने अपनी मूक भावनाओं को अपनी तूलिका द्वारा टेढ़ी–मेढ़ी रेखाकृतियों के माध्यम से गुफाओं और चट्टानों की भित्तियों पर अंकित कर अभिव्यक्त किया। उसके जीवन की कोमलतम भावनाएँ तथा संघर्षमय जीवन की सजीव झाँकियाँ उसकी तत्कालीन कलाकृतियों में आज भी सुरक्षित हैं। अपना सांस्कृतिक विकास करने के लिए मानव ने जिन साधनों को अपनाया, उनमें चित्रकला भी एक साधन थी।

भारतीय चित्रकला का उद्‌गम भी प्रागैतिहासिक काल से ही माना जाता है। समय के साथ–साथ ज्यों–ज्यों मानव ने विकास किया, भारत में यह कला भी अपने उत्कर्ष को प्राप्त करती रही। वस्तुतः भारतीय चित्रकला की प्रधानता को अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है तथा विश्व में उसकी एक विशिष्ट पहचान है।[1]

कहा जाता है कि "कला समाज का दर्पण होती है।" यह कथन पूर्ण रूप से सत्य है। किसी भी युग की सभ्यता व संस्कृति, रहन–सहन, पहनावा, खान–पान आदि का दिग्दर्शन कला के माध्यम से किया जा सकता है। जिस तरह का समाज होता है कि वहाँ वैसी ही कला जन्म लेती है। आदिम युग से लेकर आज तक की कला में इसी सच्चाई के दर्शन होते हैं। अनेक समाज और सभ्यताएँ समाप्त हो गई परन्तु हम आज भी उनके द्वारा रची गई कलात्मक वस्तुएँ, चित्रों या मूर्तिशिल्प अथवा स्थापत्य रचनाओं के माध्यम से उस समाज, संस्कृति व सभ्यता की जानकारियाँ प्राप्त कर लेते हैं। आदिम युग के मानव द्वारा बनाई गई कलाकृतियों, पत्थर के औजारों आदि के माध्यम से हम उस युग की सभ्यता व संस्कृति के दर्शन कर पाते है। आगे चलकर सिन्धु घाटी सभ्यता की खुदाई से प्राप्त कलात्मक बर्तनों, खिलौनों, मिट्‌टी की मूर्तियों, मनकों, टिकरों व स्थापत्य के खण्डहरों से हमें उस समय के समाज, संस्कृति व सभ्यता की जानकारियाँ प्राप्त हो पाती है, साथ ही उनके ज्ञान–विज्ञान का भी परिचय प्राप्त होता है। इसी प्रकार वैदिक कला, शैशुनाक, नन्द वंश, मौर्यकाल, कुषाण काल, गुप्त काल आदि में जिस भी प्रकार के समाज व संस्कृतियाँ पनपती रहीं, उसी प्रकार की कला ने भी विकास पाया। इसी प्रकार जैन कला, बौद्ध कला या राजपूत कलाओं में भी हम उस समय के समाज, उनकी विचारधाराओं, रहन–सहन, पहनावे आदि के दर्शन करते हैं जो उस समय के समाज में व्याप्त थे। अतः कला और मसाज का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। उनमें उभयनिष्ठता का सम्बन्ध है। अर्थात् वे एक–दूसरे के बिना अधूरे हैं।[2]

वास्तव में तो स्वतंत्रता के बाद भारतीय चित्रकला त्रिविधि धारा में प्रवाहित हुई। कुछ कलाकार परम्परा से ही चिपके रहे और उन्होंने पारम्परिक चित्रों में नवीनता और आधुनिकता पैदा करने की कोशिश की, किन्तु उस कला को आधुनिक कला के मानदण्डों पर खरा नहीं कहा जा सकता। दूसरी धारा के कलाकारों ने पारम्परिक मूर्त स्वरूपों को डिस्टोर्ट कर सामाजिक संदर्भों से जोड़कर चित्रांकन किया जिसमें बहुत से चित्रकारों ने आदिवासी समाज, मछुवारे, किसान, ग्रामीणजन, श्रमिक वर्ग, मध्य वर्ग आदि का अंकन कर भारतीयता की पहचान बनाए रखी। तीसरी धारा में अमूर्त चित्रण करने वाले कलाकार हैं, जिन्होंने व्यक्ति की मनोभावनाओं को अभिव्यक्ति देकर जीवन की गहरी पर्तों को उपजागर किया। शहरी जीवन की घुटन, संत्रास, भागमभाग, अन्तर्मन की मार्मिक व्यथा को व्यष्टि रूप में अंकित कर उन्होंने भारतीय चित्रकला को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जोड़ दिया। उनका गुणगान अलग विषय है, पर निश्चय ही दूसरी धारा अर्थात् समष्टि को जोड़ने वाली चित्रकला का सामाजिक संदर्भ अधिक उभर कर आया है।

शैलोज मुखर्जी तथा बेन्द्रे जैसे वरिष्ठ कलाकारों ने ग्राम्य जीवन के कार्य व्यापारों, अवसाद, उल्लास का जो चित्रण किया है वह भारतीयता का प्रतीक ही नहीं वरन् सामाजिक संदर्भों से शत्–प्रतिशत जुड़ा हुआ है। शैलोज मुखर्जी का कुंए पर पानी भरती औरतें, चौपड़ पासा खेलती औरतें और नारायण श्रीधर वेन्द्रे का शृंगार करतीं औरतें, बैशाख में अमलतास, गृहकार्य करती औरत, पायल बंधन आदि चित्रों में भारतीय जन जीवन की सहज, सरल और मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। ब्रुश के एक–एक स्ट्रोक ने चित्र को प्रभावी बना दिया है। इसी प्रकार वरिष्ठ कलाकार हैब्बर के चित्र भी भारतीय उत्सवों के उल्लसा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते है। होली, नृत्य जैसे चित्र इस कथन के साक्षी हैं।

रसिक रावल और अब्दुल रहीम अप्पा भाई आलमेलकर जैसे कलाकारों ने आदिवासी और मछुवारों की जीवन शैली के अनेक चित्र बनाकर अपनी अलग शैली का प्रादुर्भाव किया। रसिक रावल की "ऑन ए जर्नी", वूर्मन विद बर्ड, गोसिप, आदि रचनाओं में आदिवासी जीवन की झलक लंबायमान शैली में मिलती है। आलमेलकर की आदिवासी औरतों एवं मछुवारों की जीवन शैली के अनेक चित्र सुदूर प्रदेश में साधारण जीवनयापन करने वाले श्रमजीवियों का चित्रण हमारे मन को झिंझोड़कर रख देता है।

मकबूल फिदा हुसैन गरीबी झेलते हुए चित्रकला के क्षेत्र में आए, इसलिए साधारण जन की पीड़ा, संत्रास और उल्लास को उन्होंने अपनी शैली में अंकित किया। 'जमीन' उनका प्रारम्भिक वह चित्र था जिसने भारतीय अस्मिता को उजागर किया। मीणा, गुर्जर जाति की औरतों को चित्रित कर उन्होंने आधुनिक कला शैली के माध्यम से उनके अन्तर्मन को अभिव्यक्ति दी।[3]

"भारतीय चित्रकला में मनुष्य के स्वभाव या अन्तः करण को गहराई तथा पूर्णता से दिखाने का महत्त्व है। अजन्ता की चित्रावलियों में जंगल, उद्यान, पर्वत, प्रकृति, सरोवर, रंगमहल तथा कला के पात्र, सभी को एक साथ, एक ही दृश्य में अंकित किया गया है।"

इसी प्रकार भारतीय कलाकार ने एक स्थान में अनेक कालों, स्थानों अथवा क्षेत्रों की विस्तीर्णता को एक साथ ग्रहण करके व्यक्त किया है।

कल्पनाप्रियता भारतीय चित्रकला की प्रमुख विशेषता है। वह उसके आधार पर ही पली–बढ़ी, अतः उसमें आदर्शवादिता का उचित स्थान है। यूँ भी भारतीय लोगों का मन यथार्थ की अपेक्षा कल्पना में अधिक रमा। विदित है कि अनेक देवी–देवता चाहे यथार्थ में अपनी सत्त न रखते हों, पर उनका कल्पना जगत स्वरूप अनेक ह्रदयों में निवास करता है।

कल्पना का सर्वश्रेष्ठ रूप ब्रह्मा, विष्णु, महेश के साथ में दिखाई देता है। उदाहरण के लिये, बुद्ध की जन्म–जन्मान्तर की कथाएँ कल्पना प्रसूत ही हैं। जिस प्रकार सृष्टि का निरन्तर सृजन और विनाश जीवन और मृत्यु का शाश्वत नृत्य है, उसी क्रम में नटराज के स्वरूप को भारतीय कलाकार ने कल्पित किया है।

भारतीय कला की एक विशेषता उसकी प्रतीकात्मकता में निहित है। प्रतीक प्रस्तुत और स्थूल पदार्थ होता है, जो किसी अप्रस्तुत सूक्ष्म भाव या अनुभूति का मानसिक आविर्भाव करता है।

प्रतीक, कला की भाषा होती है। सांकेतिक एवं कलात्मक दोनों प्रतीकों का अत्यधिक महत्त्व है, जैसे–स्वस्तिक, सिंह, आसन, चक्र, मीन, श्री लक्ष्मी, मिथुन, कलश, वृक्ष, दर्पण, पदम्, पत्र, वैजयन्ती आदि। इसी प्रकार नाग एवं जटाजूट में से निकलती जलधारा 'शिव' का प्रतीक है। मोरपंख एवं मुरली 'कृष्ण' का प्रतीक है। कमल पर स्थित 'श्री लक्ष्मी' एक ओर सम्पन्नता का प्रतीक है, तो दूसरी ओर पद्मासन पर विराजमान होकर भौतिकता से निर्लिप्त रहने का आशय प्रकट करती है। जल और कीचड़ से जुड़ा रहकर भी पदम् सदैव जल से ऊपर रहता है। उसके दलों पर जल की बूंदें नहीं ठहरती है। इस प्रकार पदम् हमें संसार में रहते हुए भी सांसारिकता से ऊपर उठने का उपदेश देता है। 'स्वस्तिक' की चार आड़ी–खड़ी रेखाएँ चार दिशाओं की, चार लोकों की, चार प्रकार की सृष्टि की तथा सृष्टिकर्त्ता 'चतुर्मख ब्रह्मा' का प्रतीक है। इसकी आड़ी और खड़ी दो रेखाओं और उसके चारों सिरों पर जुड़ी चार भुजाओं को मिलाकर सूर्य की छः रश्मियों का प्रतीक माना गया है, जो गति और काल का भी प्रतीक है।

यूँ भी कलाकार नये–नये प्रतीकों को भी उपस्थित करते रहते हैं। उदाहरण के लिये–कलाकार ने बौद्धधर्म में बुद्ध की आकृति के स्थान पर कमल बना दिया था। रंगों के द्वारा भी कलाकार ने प्रतीकात्मकता का आभास कराया है। अजन्ता में चित्रित 'दर्पण देखती हुई स्त्री' के शरीर में हरा रंग भरा गया है, जो ताजगी का प्रतीलक है। इसी प्रकार 'विष्णु' और 'लक्ष्मी' 'पुरूष' तथा 'नारी' के प्रतीक है।

भारतीय चित्रकार यथार्थ की अपेक्षा आदर्श में ही विचरण करता है। वह संसार में जैसा देखता है, वैसा चित्रण न करके, जैसा होना चाहिये, वैसा चित्रण करता है और जब जहाँ से चाहिये की भावना का प्रादुर्भाव होता है, तो वहीं से आदर्शवाद आरम्भ हो जाता है। राजा को कलाकार आदर्श राजा के रूप में ही चित्रित करता है। प्रेमी को आदर्श प्रेमी के रूप में, इसी प्रकार बुद्ध ज्ञान देने वाले के रूप में आदर्श बन गये, अतः भिन्न–भिन्न मतों में भिन्न–भिन्न आदर्श हैं, जो कलाओं के लिये प्रेरणास्रोत रहे हैं।[4]

अंजता में भारतीय मांगलिक पशु हाथी व भारतीय पुष्पों में कमल को अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया है। शंगु, मौर्य तथा गुप्तकालीन कला में भी प्रकृति के विभिन्न अवयवों से प्रेरणा ली गई है। यहाँ पर प्रकृति और मातृत्व का एक अनोखा ही स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। जिसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है– शाल–भंजिका। मध्यकालीन जैन कला में प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों यथा–पशु–पक्षी, वृक्ष, फूलों आदि को चौबीस तीर्थकरों के प्रतीक चिन्हों के रूप में ग्रहण किया गया है जिनका दर्शन सम्पूर्ण जैन कला में दृष्टिगत होता है। मुगलकाल में भारतीय पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों एवं भारतीय प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण के साथ–साथ फारसी दृश्य–चित्रण भी हुआ है। राजस्थानी शैली के चित्रों में रची गई प्रकृति के सानिध्य से चित्र के विषयों को और भी अधिक प्राणवान बना दिया गया है। धार्मिक व पौराणिक विषयों, राधा–कृष्ण की नानाविध प्रणय लीलाएँ, राग–रागिनियों, ऋतु–मासों के आलेखन को हरी–भरी पृष्ठभूमि पर थिरकती हुई तूलिका और चटख रंगो ने और भी ह्रदय ग्राही स्वरूप प्रदान कर दिया है।[5]

राजपूत कला की अन्य उन्नत शाखा पहाडी कलम में पहाड़ी रम्य वातावरण का दिग्दर्शन हो जाने से उसमें सरसता और उन्मुक्तता का समावेश हो गया है। प्रकृति की समस्त सुषमा, उसका समस्त रूप–वैभव और सौन्दर्य मानों इस कला–शैली में मूर्तिमान हो उठा है और उसे अगणित राग–रागिनियों, ऋतु–मासों आदि से एक संगीतमय रूप प्रदान कर जीवन्त कर दिया है। भारतीय प्रकृति के चिर–परिचित अवयव, यथा पशु–पक्षी, तरल–तरंगो में विचरण करती व उतरती मछलियाँ, हरे–भरे, पुष्पित वृक्ष व पौधे, फूल–पत्तियाँ आदि उदात्त भावना व्यंजित करते हुए कला के संस्कार और मार्जन में मानों एकाकार हो उठे हैं।[6]

शिक्षा के नाम पर सर्वप्रथम कलकत्ता, मद्रास, बम्बई में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई और उसी शिक्षा के साथ–साथ कला में भी (वास्तु, मूर्ति व चित्रकला) पाश्चात्य शैली का प्रसार हुआ। इन कॉलेजों में विद्यार्थियों को यूरोपियन ढंग से चित्रकला सिखाई गई। इस शैली में मुख्य परिवर्तन रेखाओं के स्थान पर रंगो द्वारा प्रकाश और छाया के माध्यम से वस्तु–विषय को प्रदर्शित करना था। नवीन शैली की चकाचौध ने भारतीयों का मन मोह लिया। दक्षिण में मैसूर निवासी राजा रवि वर्मा पहले चित्रकार थे, जिन्होंने इस शैली को अपनाकर नये सफल प्रयोग किये। उन्हें भारत में इस नवीन शैली का जनक माना जाता है। उनके प्रमुख चित्रों में ऊषा, अनिरूद्ध और दुष्यन्त, शकुन्तला, कुलीन महिलाएँ, भिखारी, बाला कंजूस, प्रस्थान, गरीबी चाँदनी रात में पनघट से लौटते हुए, भिक्षुणी तथा भारतीय ऐतिहासिक व सामाजिक चित्र बनाए।

उपरोक्त विषय के अतिरिक्त राजा रवि वर्मा ने नारी चित्रों में विशेषकर केरल की नारियों का चित्रण किया। मंदिर के द्वारा पर भीख देते हुए, 'माँ और बच्चा आदि अनेक चित्रों में समाज की जनरूचि को प्रश्रयदिया है।[7]

ई.बी. हैबेल और कला गुरू अवनीन्द्र नाथ ठाकुर एवं डॉ. आनन्द कुमार स्वामी के अथक परिश्रम से भारतीय कला में युगान्तर परिवर्तन आया वहीं भारतीय चित्रकला का गौरव बढ़ाने वाले अजन्ता और बाघ जैसे स्थानों के भित्ति–चित्रों की अनुकृतियाँ तैयार की गई, देश विदेश में भारतीय चित्रकला की उत्कृष्टता का दिग्दर्शन हुआ।

नंदलाल बसु, असित कुमार हलदार, अमृता शेरगिल जैसे चित्रकारों ने भारतीय जनता की कसक, विषाद, उत्पीड़न और बहिष्कार रूपी समाज की भावना उनके चित्रो में जागृत हो उठी।

भारत स्वतंत्र हुआ और रहस्यवाद, छायावाद प्रयोगवाद, प्रतीकवाद की भांति कला में अनेक वादों का जन्म हुआ। अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित होने के कारण भारतीय कलाकारों को विदेश में जाकर अपनी भारतीय कला व अपने विचारों के प्रगतिकरण का अवसर प्राप्त हुआ, वहीं दूसरी और भारतीय चित्रकार वहाँ की कला से प्रेरित हुए बिना न रह सके।

प्रारम्भ में देश के प्रमुख तीन महानगरों कलकत्ता, बम्बई, एवं दिल्ली

में आधुनिक कला का सूत्रपात हुआ कलकत्ता के नये प्रगतिशील कलाकारों ने अपने ग्रुप को 'कलकत्ता ग्रुप' की संज्ञा दी। इस ग्रुप के चित्रकारों में रथीन मित्र, गोपाल घोष, सुनील माधव सेन, परितोष सेन, आशु प्राण कृष्णपाल आदि प्रमुख रहे।

बम्बई के कलाकारों में जो किसी वर्ग विशेष से प्रभावित न होकर स्वच्छ विचारधारा के पोषक रहे और ऐसे कलाकारों में के.के.हेब्बर, माधव सात वलेकर, अहिवासी आदि प्रमुख रहे। इन कलाकारों के अतिरिक्त एक वर्ग एम.एफ. हुसेन, रजा, पदम सी आदि कलाकारों का रहा जो अपने को प्रगतिशील वर्ग का मानता था और उन्होंने समाज के हर पक्ष को अपने चित्रों में चित्रित कर मानव के दुःख, दर्द, त्रासदी, भय, हर्ष, उल्लास को आमजन के सामने प्रकट किया है।

राजधानी दिल्ली में भी कलाकारों के एक वर्ग के किसी विशेष वाद अथवा वर्ग के अंतर्गत कार्य न करके अपनी कला को समाज तथा पर्यावरण के विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया। ऐसे कलाकारों में भवेश सान्याल, केवल कृष्ण, सतीश गुजराल वीरेनदे, शैलेज मुखर्जी, दिनकर शैशिक आदि प्रमुख रहे।

इन तीन महानगरों के अतिरिक्त अन्य नगरों में भी इसी प्रकार की परम्परा प्रचलित हुई और कई कलाकारों ने अशातीत सफलता अर्जित की। ऐसे कलाकारों में एन.एस. बेन्द्रे (बड़ौदा), के.एस. कुलकर्णी (बनारस), रामचन्द्र शुक्ल (बनारस) आदि प्रमुख रहे।[8]

आधुनिक चित्रकला राजा महाराजाओं और बादशाहों के आदेशों से मुक्त–विहीन है। नियमों के बंधनों में जकडी हुई नही है। आधुनिक चित्रकला में न तो समाज व नियमों का बंधन है, न धर्म, जाति, सम्प्रदाय का भय या बन्धन है और न किसी राजनैतिक दल का प्रभाव है, वरन् वह तो चित्रकार के हृदय की वह अनुभूति है, जो समाज और पर्यावरण में देखता है और वहीं अनुभूति ही फिर चित्र के माध्यम से मुखरित हो उठती है।"[9]

कलाकार की कला कला–प्रदर्शनियों, साहित्य, काव्य–गोष्ठियों, नाटकों, पुस्तक–प्रकाशनों, फिल्म–टेलीविजन अथवा संगीत–नृत्य के माध्यम से समाज और दर्शक श्रोताओं तक पहुंचती है जिसके द्वारा उनका मनोरंजन होता है। और कलाकार के उद्देश्य की पूर्ति होती है तथा समाज में कला के माध्यम से संदेश प्रसारित होता है।

इस प्रकार कला के द्वारा समाज के लोगों के मध्य एक सौहार्द्रपूर्ण वातावरण का सृजन होता है। कला सामाजिक एकता के लिए भी आवश्यक है क्योंकि वह समाज के विभिन्न व्यक्तियों की भावनाओं में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करती है। महान् कलाकृतियों के दर्शन से महान् जीवन जीने की प्रेरणा भी मिलती है। इससे सभ्यता और संस्कृति का विकास होता है। वस्तुतः जितनी ही कला विकसित होती है उतनी ही समाज की सभ्यता और संस्कृति भी विकसित होती है। कला में सम्पूर्ण समाज की रूचियों का समावेश होता है। इस प्रकार कलाकार परोक्ष रूप में जनता की भावनाओं, प्रेरणाओं तथा विचारों की ही अभिव्यक्ति कला के माध्यम से करता है। इसका सबसे ज्वलन्त उदाहरण है आधुनिक कला, आधुनिक साहित्य, कविता, नाटक, फिल्म आदि। आज का समाज जितना ही दुरूह है उतना ही जटिल है। कलाकार आज जो भी समाज से ग्रहण कर रहा है, वही वो वापस लौटा भी रहा है। कुछ लोग इसके लिए सिर्फ कलाकार को और उसकी कला को जिम्मेदार मानते है। लेकिन ऐसा नहीं है। कलाकार जो कुछ भी समाज से पाता है या अपने चारों और के वातावरण को देखकर सीखता है, उन्हीं अनुभवों को कला के माध्यम से दोहराता है।[10]

भारतीय कला सदैव से ही प्रकृति से अनुप्राणित होती रही है। भारतीय दर्शन में भी प्रकृति की महानता और उसकी विशालता को ब्रह्म का स्वरूप माना गया है। कहा जाता है कि चित्रकला की रचना सर्वप्रथम ब्रह्मा ने की। उन्होंने एक राजा के पुत्र की मृत्यु होने पर उसके पुत्र का चित्र बनाकर उसे प्राण दान दिया। अतः भारतीय दृष्टिकोण में प्रकृति की रचना ईश्वर ने की है। महान् दार्शनिक प्लेटो भी कुछ इसी प्रकार का कथन करते हैं। उनके अनुसार–कला सत्य की अनुकृति की अनुकृति है। अर्थात् यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी ब्रह्म की अनुकृति है। अतः यह प्रकृति उसी सत्य की अनुकृति है और कला उसी की अनुकृति करती है। भारतीय कला का एक अभिन्न अंग संगीत भी रहा है। संगीतकारों ने संगीत की ध्वनियाँ प्रकृति से ही ग्रहण की है।

प्रकृति का अन्य प्रयोग यहाँ सौन्दर्य के आदर्श को ग्रहण करना भी रहा है। भारतीय कलाकारों ने अनेक प्राकृतिक उपमानों को सौन्दर्य के प्रतीक के रूप में ग्रहण किया है। अरस्तू कहते है–"कला प्रकृति के सौन्दर्यमय अनुभवों का अनुकरण है।"

प्रसिद्ध यूरोपियन चित्रकार हेनरी मातिस के अनुसार–"कलाकार को प्रकृतिक का मनन करना चाहिए और अपने को उसकी लय के साथ तदाकार कर लेना चाहिए।" अतः प्रकृति से हम लय के साथ–साथ अनेक प्रकार के भाव भी ग्रहण करते हैं। जैसे तूफान के आने पर हम भय का भाव, आतंक का भाव ग्रहण करते हैं। शीतयुद्ध में हम शीत का आभास करते है। प्राकृतिक का प्रयोग शुद्ध प्रकृति चित्रण के रूप में भी हुआ है। इसका चित्रण काव्य में सर्वप्रथम वाल्मिकी ने प्रारम्भ किया।

प्रकृति का एक अन्य प्रयोग पृष्ठभूमि के रूप में भी हुआ है। पृष्ठभूमि में प्राकृतिक चित्रण से तात्पर्य प्रकृति से ही चित्र को भर देने से न ही होता हैं वरन् महारास के अन्तर्गत शरद्–पूर्णिमा का दृश्य भगवान श्री कृष्ण की रासलीला को जैसे और भी अधिक सुन्दर और प्रभावशाली बना देता है, उससे माने रखता है। रहस्यवादी कलाकार प्रकृति में प्रायः पार–ब्रह्म और परमेश्वर के दर्शन करता है और यहाँ तक की कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण ही कर दिया है।[11]

चित्रकला में प्रकृति–चित्रण का प्रयोग लैण्ड स्केप पेन्टिंग के रूप में यूरोप में सर्वप्रथम प्रभाववाद के अन्तर्गत प्रारम्भ हुआ। ये प्रभाववादी कलाकार बहुत प्रातः काल से ही खेतों या खुले मैदोनों में तालाबों के किनारे या पेड़ों के नीचे जाकर बैठते थे और धूप तथा प्रकाश के बदलते हुए प्रभावों को अपने कैनवास पर उतारा करते थे। इन कलाकारों ने प्रकृति के अनेक रूपों का चित्रांकन किया। माने, मोने, पिसारो आदि कलाकारों ने प्रकृति चित्रण से ही प्रभाववाद का प्रारम्भ किया। नव प्रभाववाद भी मुख्यतया प्रकृति से प्रभावित रहा। आगे चलकर उत्तर प्रभाववाद में वॉन–गॉग, गोंगा आदि ने भी अपने चित्रों में प्रकृति का चित्रण तो किया परन्तु उनके चित्र भाव–प्रवण अधिक हो गये थे। उन्होंने प्रकृति को जैसा देखा वैसा ही न बनाकर उसे अपनी भावनाओं पर आधारित किया। आधुनिक भारतीय कलाकारों में भी अनेक कलाकार लैण्डस्केप पेन्टिंग कर रहे हैं। ऐसे कलाकारों में "परमजीत सिंह" का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। ब्रिटिश कलाकार "कॉस्टेबिल व टर्नर" को भी प्रसिद्ध लैण्डस्केप चित्रकार के रूप में जाना जाता है। कला और प्रकृति का अटूट सम्बन्ध है क्योंकि कला ही प्रकृति की सुन्दरता को व्यक्त करने का एक मात्र माध्यम है।"[12]

आज कला अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को छू चुकी है। वहाँ पर देश–विदेश की सीमाओं का बंधन नहीं है। अतः कला ने अन्तर्राष्ट्रीय समानता भी प्रदान की है। इस प्रकार कला के द्वारा समाज में सामन्जस्य, सहयोग, व शान्तिपूर्ण वातावरण का सृजन होता है। साथ ही समाज और पर्यावरण सम्बन्धित व खतरों, प्रदूषण से रोकथाम, मानव द्वारा प्रकृति को होने वाले नुकसान आदि का संदेश चित्रकला के माध्यम से विभिन्न प्रदर्शनियों, प्रतियोगिताओं से

आमजन तक पहुंचाने में चित्रकला सहायक सिद्ध हुई है। आज कला–भावना जीवन के हरक्षेत्र में रच–बस गई है। कला का शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्व निर्विवाद है। बाल्यकाल से ही बच्चों को कला की शिक्षा दी जाती है। प्लेटों ने कहा है कि "कलाएँ, मानव को शिक्षित व सुसंस्कृत बनाती है।" उनका मत है कि बच्चों की सौन्दर्य भावना को विकसित करने के लिए उन्हें नैसर्गिक ढंग की शिक्षा दी जानी चाहिए। अतः कला में सृजनात्मक प्रवृत्तियों तथा मौलिक चिन्तन की प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने के तत्व अधिक क्रियाशील एवं महत्वपूर्ण होने चाहिए, क्योंकि इन्हीं से सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास संभव है, और इसी से आगे चलकर सम्पूर्ण समाज का विकास होता है।

अतः हम कह सकते हैं कि कलाएँ ही मानव समाज को परिपूर्णता प्रदान करती है। यह विश्व में विनाशकारी कार्यों को प्रस्फुटित होने से रोकती है और पर्यावरण की रक्षा में सहायक है। कला मानवजीवन को उपयोगिता प्रदान करती है।[13]

संदर्भ ग्रंथ

1. रीता प्रतापः भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, रा. हि.ग्र.अ., जयपुर, छठा संस्करण : 2009, पृ.सं. 3
2. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती' : ललितकला के आधारभूत सिद्धान्त, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, तृतीय सं. : 2011, पृ. 177
3. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ, उषा गोयल : संस्कृति समाज और साहित्य, रावत पब्लिकेशन जयपुर एवं नई दिल्ली, 1997, पृ. 59–60
4. रीता प्रतापः भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, रा. हि.ग्र.अ., जयपुर, छठा संस्करण : 2009, पृ.सं. 9
5. एम.एस. मावड़ी : भारत की प्रमुख चित्र–शैलियाँ, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, प्रथम सं. : 1989, पृ. 33, 34
6. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती' : ललितकला के आधारभूत सिद्धान्त, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, तृतीय सं. : 2011, पृ. 173
7. महेन्द्र वर्मा : भारतीय चित्रकला की परम्परा, भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 2006, पृ.स. 104–105
8. आर.ए. अग्रवाल : कला विलास, भारतीय चित्रकला का विवेचन, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993, पृ.स. 186–188
9. महेन्द्र वर्मा : भारतीय चित्रकला की परम्परा, भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. : 2006, पृ. 107
10. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती' : ललितकला के आधारभूत सिद्धान्त, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, तृतीय सं. : 2011, पृ. 178
11. एम.एस. मावड़ी, पृ. 101–102
12. र.वि. साखलकर : आधुनिक चित्रकला का इतिहास, रा. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर अठाहरवाँ सं : 2010, पृ. 81, 82
13. मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती' : ललितकला के आधारभूत सिद्धान्त, रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, तृतीय सं. : 2011, पृ. 179